हिन्दू धर्म
(Hindu Religion)

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश रहा है जिसमें अनेकानेक धर्म-परम्पराएँ उदित होती रही हैं। इनमें हिन्दू धर्म प्राचीनतम है। इसका उद्गम ऋग्वेद से माना जाता है। उस समय यह 'आर्य धर्म' के नाम से जाना जाता था और इसको मानने वाले 'आर्य' कहलाते थे। हिन्दू धर्म की व्याख्या करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि हिन्दू किसे कहेंगे ? इसका उत्तर यह है कि हिन्द (भारत) का निवासी हिन्दू और उसका धर्म हिन्दू हुआ। भौगोलिक दृष्टि से लोकमान्य तिलक की व्याख्या सटीक है, जो इस प्रकार है—

आसिन्धोः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
"पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

अर्थात् सिन्धु नदी के उद्गम स्थान से लेकर सिन्धु (हिन्द महासागर) तक सम्पूर्ण भारत भूमि जिसकी पितृभू (अथवा मातृभूमि) तथा पुण्यभू (पवित्र भूमि) है, वह हिन्दू कहलाता है और उसका धर्म हिन्दू धर्म अथवा हिन्दुत्व है।"

8 राधाकृष्णन, धर्म और समाज, पृ. 1231.
9 P. V. Kane, History of Dharma Shastra.

हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व
(Main Elements of Hindu Religion)

हिन्दू धर्म में प्रत्येक अपने धार्मिक विश्वासों के अनुरूप अर्चना, आराधना आदि करने के लिए स्वतन्त्र है। अपनी इसी विशेषता के कारण हिन्दू धर्म अद्यावधि अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम हो सका है। भारत की अधिकांश जनता हिन्दू धर्म को ही स्वीकार करती है। यद्यपि हिन्दू धर्म के कोई निश्चित सिद्धान्त अथवा मत आदि तो नहीं हैं, फिर भी कुछ ऐसे मूलतत्त्व हैं जो हिन्दू धर्म का प्राण कहे जा सकते हैं, जो इस प्रकार वर्णित किए जा सकते हैं—

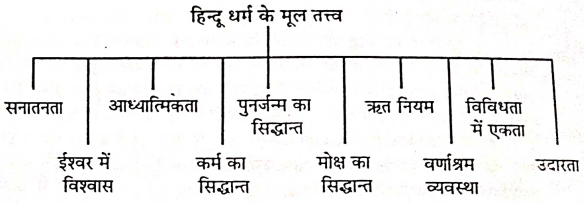

1. सनातनता (Sanatanta)—यद्यपि हिन्दू धर्म का कोई प्रवर्तक नहीं हुआ किन्तु अनादि काल से इसका विकास अक्षुण्ण रूप से होता आ रहा है, इस कारण इसे सनातन धर्म कहा जाता है। "एष धर्मो सनातनः"। 'श्रुति', 'स्मृति' के आधार पर इस धर्म की प्राचीनता स्पष्ट होती है और प्राचीनता की इस विशेषता के कारण ही इस धर्म ने अनेकानेक बाह्य तत्त्वों को अपने में एकाकार कर लिया। युग-परिवर्तन के साथ भी यह धर्म अपने पथ से विचलित नहीं हुआ। बाह्य आक्रमण व आन्दोलन आदि भी इसके मूलरूप को प्रभावित नहीं कर सके। इसका कारण है कि यह सनातन-सत्य पर आधारित है। इसी से यह धर्म प्राचीनतम, विकासशील सनातन-धर्म कहलाता है।

2. ईश्वर में विश्वास (Faith in God)—हिन्दू धर्म का मूलतत्त्व यह है कि यह धर्म स्वीकार करता है कि दृश्यमान जगत की विविधता के पीछे एक आध्यात्मिक एकता है जो एक ईश्वर द्वारा संचालित है, वही उसका नियन्ता है और सारा संसार उसमें मोतियों की माला के धागे के समान पिरोया हुआ है। किन्तु इस ईश्वर का स्वरूप अलग-अलग हो सकता है। इस धर्म में एक ही ईश्वर की सत्ता में विश्वास करना अनिवार्य नहीं है; विविध देवों के रूप में भी जगत् का नियन्ता परमात्मा ही है अर्थात् कोई भी समुदाय या समाज स्वेच्छा से किसी भी देव की आराधना कर सकता है। इस विषय में किसी को भी कोई आपत्ति नहीं है, यह भी हिन्दू धर्म का मूल तत्त्व है।

3. आध्यात्मिकता (Spirituality)—आध्यात्मिकता भी हिन्दू धर्म का एक मौलिक तत्त्व है। प्रत्येक हिन्दू ईश्वर के आध्यात्मिक स्वरूप को स्वीकार करता है। सभी को उस परम सत्ता की सम्पूर्णता पर विश्वास ह और यह जगत् और इसकी समस्त वस्तुएँ उस परम सत्ता की ही अभिव्यक्ति हैं, ऐसा सभी को ज्ञात है। सत्, चित् और आनन्द—ये तीन उस आध्यात्मिक सत्ता के पक्ष हैं जो सच्चिदानन्द स्वरूप है और व्यक्ति सदैव उस आध्यात्मिक या ईश्वरीय दिव्य स्वरूप की अनुभूति करने के लिए प्रेरित रहता है। इस प्रकार हिन्दुओं का जीवन-दर्शन आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है।

4. **कर्म का सिद्धान्त** (Theory of Karma)—हिन्दू धर्म कर्म के सिद्धान्त में विश्वास रखता है। उसके मत में प्रत्येक को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल अनिवार्यतः भोगना पड़ता है। कर्म ही व्यक्ति के जीवन को नियन्त्रित करते हैं अर्थात् मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है वह जैसे सद्-असद् कर्म करेगा, उसे उसी प्रकार की भूमिका निभानी होगी। यह कर्म का सिद्धान्त हिन्दुओं को बुरे कर्म करने से रोकता है और सद्कर्मों को करने की प्रेरणा देता है। कर्मों के फल संस्कार रूप में सुरक्षित रहते हैं जो भावी जीवन को संचालित करते हैं। यह कर्मवाद का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण मूल तत्त्व है। जैसा कि कहा गया है, ''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मं शुभाशुभम्'' अर्थात् हर कोई अपने शुभाशुभ कर्मों का अनिवार्य फल भोगता है।

5. **पुनर्जन्म का सिद्धान्त** (Theory of Rebirth)—पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्मवाद के सिद्धान्त से ही जन्मता है। कर्मवाद के आधार पर व्यक्ति को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है और सभी कर्मों का फल एक ही जीवन में मिल पाना सम्भव नहीं होता, अतः उनको भोगने के लिए दूसरा जन्म धारण करना आवश्यक होता है। अतः पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार हमें जो योनि वर्तमान जन्म में प्राप्त हुई है उसका कारण हमारे पूर्व जन्मों के फल हैं। संचित और क्रियमाण कर्मों के फल भोगने के लिए पुनर्जन्म धारण करना आवश्यक है—यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्रत्येक हिन्दू को उसके जीवन में आने वाली आपत्तियों को सहन करने की शक्ति भी देता है।

6. **मोक्ष का सिद्धान्त** (Theory of Moksha)—हिन्दू धर्म के अनुसार मानवीय आत्मा भव-बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर मोक्ष की कामना करती है। भव-बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना ही हिन्दुओं का चरम ध्येय है। उनका विश्वास है कि सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु व भौतिक जगत् आदि के चक्र से मुक्त होकर उन्हें ईश्वरीय पूर्णता अवश्य प्राप्त होगी और इस अमरत्व को प्राप्त करना ही मोक्ष है। हिन्दू धर्म के अनुसार इस मुक्ति को प्राप्त करने के साधन अलग-अलग हो सकते हैं, जैसे—राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग आदि; किन्तु साधनों की भिन्नता होते हुए भी साध्य एक ही है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति। मोक्ष ही मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम तीनों ही पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही हैं।

7. **ऋत-नियम** (Rit Niyam)—वेदों के आधार पर ऋत-नियम हिन्दू धर्म का मूलतत्त्व है। ऋत का अर्थ है—'नैतिक'; और वैदिक धर्म में 'ऋत' को सूर्य, चन्द्र आदि प्राकृतिक शक्तियों का नियन्ता कहा गया है। जैसे जगत् के बाह्य पदार्थ सूर्य, चन्द्र आदि ऋत-नियम के आधार पर संचालित होते हैं उसी प्रकार इसकी आन्तरिक व्यवस्था भी 'ऋत' के आधार पर टिकी है अर्थात् यह जगत् एक नैतिक व्यवस्था (ऋत) में आबद्ध है। यह नैतिक नियम ही धर्म है—सभी श्रेष्ठजन इन नैतिक नियमों का पालन करते हैं; इसी से अधर्म पर धर्म की विजय सर्वत्र होती देखी गई है। नैतिक नियम मानव-जीवन के लिए सर्वोपरि है।

8. **वर्णाश्रम-व्यवस्था** (Varnashram Vyavastha)—हिन्दू धर्म में वर्णाश्रम-व्यवस्था का विशेष महत्त्व है। इस व्यवस्था के द्वारा समाज और व्यक्ति के जीवन को क्रमशः चार वर्णों एवं चार आश्रमों में बाँटा गया है। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत समाज चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण में विभाजित किया गया है। इन चारों वर्णों के

कार्य क्रमशः (1) बौद्धिक कार्यों की पूर्ति, (2) समाज की सुरक्षा-व्यवस्था, (3) आर्थि क्रियाओं की पूर्ति तथा (4) सेवा करना है। इसी प्रकार से प्रत्येक हिन्दू के जीवन को च आश्रमों में बाँटा गया है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। प्रथम दो आश्रम मनु के शारीरिक एवं सामाजिक दायित्वों को निभाने के लिए हैं और बाद के दोनों आश्रम ईश्व और मानवता के प्रति उच्चतर दायित्वों को निभाने के लिए हैं। चारों आश्रमों का निर्वह करना ही व्यक्ति का धर्म है। इस आश्रम व्यवस्था का निर्वाह करते हुए व्यक्ति अपने परिवा समाज, राष्ट्र और अन्त में विश्व के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है। आश्रम-व्यवस् बताती है कि व्यक्ति का अस्तित्व केवल स्वयं तक सीमित नहीं है वरन् उसका उद्देश समाज, राष्ट्र व विश्व के उच्चतम ध्येयों की पूर्ति करना है। इस रूप में वर्णाश्रम-व्यवस् नैतिक मूल्यों की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

9. **विविधता में एकता** (Unity in Diversity)—हिन्दू धर्म का एक महत्त्वपू मूलतत्त्व यह है कि इसमें विविधता में एकता पाई जाती है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अने सम्प्रदाय, विचारधाराएँ, रीति-रिवाज आदि पाए जाते हैं, सभी का दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् है अनेक धार्मिक सम्प्रदाय, जैसे—वेदान्ती, अद्वैतवादी, सांख्य व न्याय-वैशेषिक आदि हैं कि कोई भी ऐसी परम्परा नहीं है, जिसकी परिपालना करने के लिए कोई हिन्दू बाध्य हो। शै वैष्णव, आर्य समाज आदि सभी पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण रखते हुए भी सभी वेद को प्रमा मानते हैं। वास्तव में हिन्दू धर्म की यह विशेषता ही हमारे जनतन्त्र और धर्मनिरपेक्ष राज्य व मूल सिद्धान्त कही जा सकती है।

10. **उदारता** (Liberality)—उदारता हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी विशेषता कही ज सकती है। परिस्थितियों से अनुकूलन करने की सामर्थ्य, सहिष्णुता और लचीलेपन व विशेषता के कारण ही यह धर्म प्राचीनतम है। विश्व के सभी श्रेष्ठ धर्मों, सन्तों व महापुरु की शिक्षाएँ आज भी समादर के साथ यहाँ स्वीकारी जाती हैं। इस धर्म को सहिष्णुता उदारता का अक्षय-कोष कहा जा सकता है।

इस प्रकार उपर्युक्त मूलतत्त्वों के कारण ही हिन्दू धर्म व्यापक, सशक्त, सनातन ए चिरायु कहा जा सकता है। अब हिन्दू धर्म के विभिन्न स्वरूपों व लक्षणों पर प्रका डाला जाएगा।

हिन्दू धर्म के विविध स्वरूप
(Various forms of Hindu Religion)

हिन्दू धर्म व्यक्ति के कर्त्तव्यों को अत्यधिक महत्त्व देता है और कर्त्तव्य देश, का परिस्थिति और पात्र के अनुसार भिन्नता लिए हुए होते हैं। हिन्दू धर्म में प्रत्येक अपने धार्मि विश्वास के अनुरूप आराधना, विधि-संस्कार आदि सम्पन्न करने के लिए स्वतन्त्र होता है अद्यावधि हिन्दू धर्म का अस्तित्व अक्षुण्ण बना हुआ है। इसका कारण इसके प्रमुख तं स्वरूप हैं जो निम्नलिखित हैं—

हिन्दू धर्म के स्वरूप

- सामान्य धर्म
- विशिष्ट धर्म
- आपद्धर्म

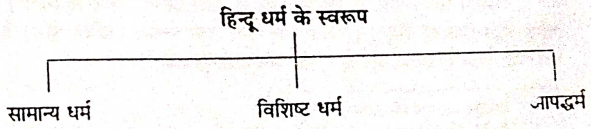

1) सामान्य धर्म (Samanya Dharma)

सामान्य धर्म नैतिक नियमों से सम्बद्ध है जिसे 'मानव-धर्म' भी कहा जा सकता है। न नियमों की परिपालना करना प्रत्येक हिन्दू,—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उच्च वर्ग हो अथवा निम्न वर्ग, बाल हो अथवा वृद्ध—का पुनीत कर्त्तव्य है। सामान्य धर्म का आशय है कि सभी धर्म समान लक्ष्य रखते हैं और वह है—मनुष्यों में सद्गुणों का विकास करना, उसे कल्याण की ओर प्रेरित करना।

श्रीमद्भागवत में सामान्य धर्म के तीस लक्षण बताए गए हैं—1. सत्य, 2. दया, 3. तपस्या, 4. पवित्रता, 5. कष्ट सहने की क्षमता, 6. उचित-अनुचित का विचार, 7. मन का संयम, 8. इन्द्रियों का संयम, 9. अहिंसा, 10. ब्रह्मचर्य, 11. त्याग, 12. स्वाध्याय, 13. सरलता, 14. सन्तोष, 15. सभी के लिए समान दृष्टि, 16. सेवा, 17. धीरे-धीरे सांसारिक भोगों का त्याग, 18. लौकिक सुख के प्रति उदासीनता, 19. मौन, 20. आत्म-चिन्तन, 21. सभी प्राणियों में अपने आराध्य को देखना व उन्हें अन्न देना, 22. महापुरुषों का साथ, 23. ईश्वर का गुणगान, 24. ईश-चिन्तन, 25. ईश-सेवा, 26. पूजा व यज्ञों का निर्वाह, 27. ईश्वर के प्रति दास्य भाव, 28. ईश-वन्दना, 29. सखाभाव, और 30. ईश्वर को आत्मसमर्पण।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

सामान्य धर्म को समझने के लिए इनकी विवेचना निम्नानुसार है—

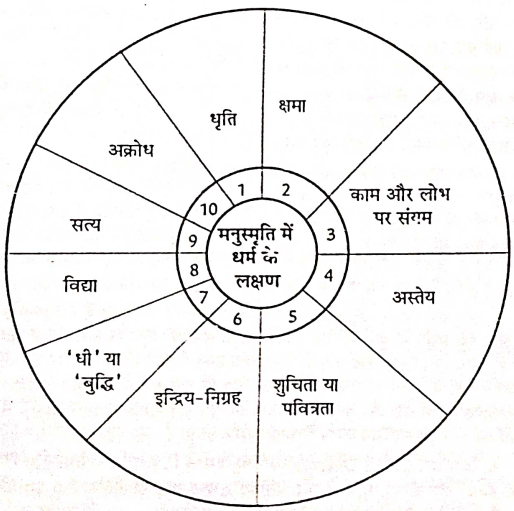

1. धृति (Steadiness)—धृति का अर्थ है अपनी जीभ अथवा जननेन्द्रियों पर संयम रखना। जो व्यक्ति धृति या धैर्य गुण को विकसित कर लेता है, वह धीर कहलाता है। यह धर्म का सामान्य लक्षण है।

2. क्षमा (Forgiveness)—क्षमा से आशय है कि शक्तिशाली होते हुए भी क्षमाशील होना, अर्थात् दूसरों को क्षमा करना व उदारता का व्यवहार करना। अगर व्यक्ति अपनी कमजोरी या मजबूरी के कारण अन्याय सहन करता है तो वह क्षमा या उदारता नहीं कहलाती है। यह नियम साधारण त्रुटियों पर लागू होता है। गम्भीर अपराधों के लिए तो व्यक्ति को दण्ड देना ही चाहिए।

3. काम और लोभ पर संयम (Restraint on Desire and Temptation)—मनुस्मृति के अनुसार व्यक्ति को अपनी कामवासनाओं को मन और कर्म से नियन्त्रित करना चाहिए। इससे जीवन नियमित एवं दोषमुक्त हो जाता है। व्यक्ति की कार्यकुशलता बढ़ जाती है। ऊपर से साधुवाद दिखाना एवं मन में कामवासना का विचार करना अधिक हानिकारक होता है। कृष्ण ने गीता में इसको 'मिथ्याचार स्थिति' बताया है।

4. अस्तेय (Not Stealing)—अस्तेय का अर्थ 'चोरी नहीं करना' है। नारद-स्मृति में लिखा है कि कोई व्यक्ति पागल या निद्रा में हो और उसकी कोई वस्तु दूसरा व्यक्ति छल-कपट से ले लेता है तो यह चोरी है। महर्षि पतंजलि की मान्यता है कि जो व्यक्ति अस्तेय धर्म का पालन करता है उसके पास सम्पूर्ण रिद्धि-सिद्धि आ जाती है।

5. शुचिता या पवित्रता (Sacredness)—पवित्रता या शुद्धि दो प्रकार की होती है—(1) शारीरिक जो स्नान तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करने से होती है, तथा (2) मन एवं आत्म-शुद्धि जो सत्य वचन, तप एवं ज्ञान से होती है। शुचिता इसी पवित्रता को कहते हैं। मनुस्मृति के अनुसार सत्य-वचन मन को शुद्ध करते हैं; तप जीवात्मा को पवित्र करते हैं और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। अशुचिता मन और विचारों में विकार पैदा करती है तथा शुचिता उच्च विचार का विकास करती है।

6. इन्द्रिय-निग्रह (Sensual Subjugation)—इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना ही इन्द्रिय-निग्रह कहलाता है। गीता में लिखा है, "इन्द्रियों पर नियन्त्रण न रहने से विषयों में आसक्ति बढ़ती है, विषय-कामनाओं की पूर्ति नहीं होने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मूढ़ता आती है, मूढ़ता उत्पन्न होते ही स्मृति-विभ्रम पैदा हो जाता है, स्मृति का नाश होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश होने पर मनुष्य का ही सर्वनाश हो जाता है।" महात्मा गाँधी ने भी 'सत्य के प्रयोग' अथवा 'आत्मकथा' में ऐसा ही लिखा है। मनुस्मृति में भी इन्द्रिय-निग्रह को धर्म की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता बताया गया है।

7. 'धी' या 'बुद्धि' (Knowledge)—व्यक्ति में किसी वस्तु के गुण और दोषों को समझने की शक्ति का विकास ही 'धी' धर्म कहलाता है। बुद्धि के विकास के अभाव में कर्त्तव्यों की पूर्ति करना कठिन हो जाता है।

8. विद्या (Education)—विद्या से विवेक जागृत होता है। विद्या वह है जो व्यक्ति को काम, क्रोध, लोभ, मोह और मन की कामवासनाओं से मुक्ति दिलाती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—जैसे चारों पुरुषार्थों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करवाती है। इससे व्यक्ति ज्ञान-

मार्ग पर चलकर मोक्ष की प्राप्ति करता है तथा मानव-कल्याण सम्बन्धी आचरण करता है। शास्त्रों में लिखा है, "नास्ति विद्यासमं चक्षुः" अर्थात् विद्या से महत्त्वपूर्ण कोई दृष्टि नहीं है। भारतीय संस्कृति में "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या वह है जो विमुक्ति की ओर ले जाती है—इस रूप में विद्या को परिभाषित किया गया है।

9. सत्य (Truth)— ऋग्वेद में निम्न शब्दों में सत्य को ही मनुष्य का परम धर्म बताया गया है, "सत्यम् वद् धर्मम् चर।" सत्य धर्म में सामान्य धर्म के सभी लक्षण आ जाते हैं। महाभारत में सत्य के निम्न तेरह लक्षण बताए गए हैं—1. निष्पक्षता, 2. इन्द्रियों पर नियन्त्रण, 3. क्षमाशीलता, 4. सहिष्णुता, 5. लज्जा, 6. कष्ट स्वीकारना, 7. दान, 8. ध्यान, 9. उचित-अनुचित कार्यों का ज्ञान, 10. धृति, 11. दया, 12. क्षमा, और 13. अहिंसा। एक प्रकार से सत्य सभी धर्मों का आधार है।

10. अक्रोध (Restraint Anger)—अक्रोध अर्थात् क्रोध नहीं करना; यह इच्छाओं के अपूर्ण रहने पर होता है। क्रोध सभी अवगुणों का स्रोत है। व्यक्ति कर्त्तव्यों की पूर्ति शान्त मन से ही कर सकता है। क्रोध पर नियन्त्रण रखना व्यक्ति के लिए अत्यावश्यक है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के शारीरिक, नैतिक, आत्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिए सामान्य धर्म के लक्षणों का पालन करना अत्यावश्यक है। किसी भी समाज के मानक के प्रतिमानों की विशेषताओं में इन्हें देखा जा सकता है। ये विशेषताएँ सभी धर्मों में समाजों के संगठन एवं व्यवस्था के लिए भी आवश्यक हैं।

(2) विशिष्ट धर्म (Vishishta Dharma)

उन कर्त्तव्यों का पालन करना, जिनका व्यक्ति के लिए समय, स्थान और परिस्थिति के अनुसार आवश्यक होता है, विशिष्ट धर्म कहलाता है। क्योंकि यह धर्म व्यक्ति विशेष की आयु, स्वभाव, वर्ण, कुल और व्यवहार आदि से सम्बन्धित होता है इसलिए इसे स्वधर्म भी कहा गया है। विशिष्ट धर्म के महत्त्व के सम्बन्ध में गीता में लिखा है, "स्वकर्मणा तमभ्यर्चय सिद्धिं विदन्ति मानवः।" अपने धर्म का पालन करने से ही व्यक्ति मोक्ष का अधिकारी होता है। विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म, राज धर्म, युग धर्म, मित्र धर्म, गुरु धर्म आदि आते हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. वर्ण धर्म (Varna Dharma—हिन्दू सामाजिक संरचना में चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे; बाद में अस्पृश्य वर्ण और विकसित हो गया था। प्रत्येक वर्ण के कर्त्तव्यों को वर्ण धर्म कहा गया है जो निम्न प्रकार हैं—(1) *ब्राह्मण वर्ण* का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ, धार्मिक कार्यों को करना, दान लेना तथा देना आदि था। (2) *क्षत्रिय वर्ण* का धर्म समाज के अन्य वर्णों के जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा करना, अध्ययन करना, दान देना, युद्ध करना शासन करना तथा बाहरी आक्रमणों का शौर्य से सामना करना है। (3) *वैश्य वर्ण* का धर्म पशुपालन, कृषि, उद्योग एवं व्यवसाय से जीविकोपार्जन तथा धनोपार्जन करना है। (4) *शूद्र वर्ण* का धर्म उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करना है। (5) पाँचवाँ और अन्तिम— *अस्पृश्य वर्ण* का धर्म सफाई आदि का कार्य करना है। वर्ण धर्म प्रत्येक वर्ण के कार्यों तथा कर्त्तव्यों की व्याख्या करता है।

2. आश्रम धर्म (Ashram Dharma)—हिन्दू समाज में व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। प्रत्येक आश्रम की अवधि आश्रम धर्म के अनुसार 25-25 वर्ष की है। धर्मानुसार इन आश्रमों के कर्त्तव्य निम्न प्रकार हैं—(1) *ब्रह्मचारी का धर्म* गुरु के आश्रम में निवास करना, गुरु की सेवा करना, पवित्र जीवनयापन करना, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, धर्म में निष्ठा रखते हुए विद्या प्राप्त

करना आदि हैं। यह आश्रम व्यक्तित्व-निर्माण का काल है। (2) *गृहस्थ का धर्म* प्रतिदिन पाँच महायज्ञ करना, दूसरे आश्रम के सदस्यों को दान एवं सहायता देना, सन्तानोत्पत्ति करना, परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण करना आदि हैं। इस आश्रम में व्यक्ति अर्थ और काम की पूर्ति करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है। (3) *वानप्रस्थी का धर्म* परिवार, धन और संसार का मोह त्यागकर जंगल में कुटिया बनाकर रहना, अन्य आश्रम के लोगों का मार्गदर्शन करना, सभी के कल्याण के लिए कार्य करना, निष्काम भाव से धर्म-कर्म करना, इन्द्रिय-विषयों पर नियन्त्रण रखना तथा भोग-विलास त्याग देना है। (4) संन्यासी का धर्म संसार को पूर्ण रूप से त्यागकर, विरक्त होकर अपने आप को ईश्वर में लीन कर देना है। संन्यासी का धर्म फल-फूल से जीवनयापन करना या भिक्षा से शरीर की रक्षा करना है। आश्रम धर्म में व्यक्ति के लिए प्रत्येक आश्रम से सम्बन्धित कर्त्तव्य निश्चित किए गए हैं जिनके पालन से व्यक्ति स्वयं का विकास, परिवार का पालन, समाज की सेवा करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति करता है।

3. कुल धर्म (Kul Dharma)—कुल धर्म के अन्तर्गत कुल, परिवार या संयुक्त परिवार आदि के जो सदस्य होते हैं उनके एक-दूसरे के प्रति जो कर्त्तव्य होते हैं उनको रखा गया है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कुल के सदस्यों के भूमिका-विन्यास के कर्त्तव्य कुल-धर्म कहलाते हैं। कुल या परिवार के भूमिका-विन्यास हैं—पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहिन, बहिन-बहिन, पिता-पुत्री, माता-पुत्री आदि। पिता जो परिवार का मुखिया है उसका कर्त्तव्य—परिवार के सदस्यों का पालन-पोषण करना है। पति के रूप में उसका धर्म है—पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। इसी प्रकार पत्नी का कर्त्तव्य या धर्म है—पति की सेवा एवं उसकी इच्छाओं की पूर्ति करना एवं यौनिक पवित्रता बनाए रखना। भाई एवं पुत्र का धर्म है—त्याग, निष्ठा, माता-पिता की सेवा, परिवार के सदस्यों के लिए कल्याणकारी कर्त्तव्य सम्बन्धी कार्य करना। कुल धर्म में व्यक्ति—पिता, पति, भाई, पुत्र आदि के रूप में अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए श्रेष्ठ कार्य करके पापों से मुक्ति पाता है। इसी प्रकार स्त्री—पत्नी, पुत्री, बहिन, माता के रूप में अपने धर्म का पालन करके कुल की खुशहाली में वृद्धि करती है। यही सब कुछ-कुल धर्म कहलाता है।

4. राज धर्म (Raj Dharma)—महाभारत में राजा के सम्बन्ध में निश्चित कर्त्तव्यों को स्पष्ट किया गया है जिनका पालन करना शासक के लिए आवश्यक है। महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है कि वह राजा मोक्ष का अधिकारी है जो अपने देश और धर्म की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है। राजा के कर्त्तव्य—सैनिकों का सम्मान करना, प्रजा की रक्षा करना, बाहरी आक्रमणों से प्रजा की रक्षा करना, राजोचित व्यवहार करना, दृढ़-प्रतिज्ञ होना आदि हैं। राज धर्म में एक राजा के सभी कर्त्तव्य आ जाते हैं।

5. युग धर्म (Yug Dharma)—यह काल धर्म भी कहलाता है। मनुस्मृति, पाराशर स्मृति और पद्म पुराण में युग धर्म पर प्रकाश डाला गया है। युग के परिवर्तन के साथ-साथ समाज में परिवर्तन होता है तथा उसकी आवश्यकताओं में परिवर्तन आता है। इसी के साथ-साथ कर्त्तव्यों में परिवर्तन आता है जिनका उल्लेख ही युग धर्म है। सतयुग में तप; त्रेता युग में ज्ञान; द्वापर युग में यज्ञ और कलियुग में दान ही युग धर्म है। हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने युग की माँग को ध्यान में रखकर जिन कर्त्तव्यों का निर्धारण किया है, वह सब युग धर्म कहलाता है।

6. मित्र धर्म (Mitra Dharma)—हिन्दू धर्म में मित्र धर्म को सर्वोपरि माना गया है क्योंकि मित्रों की परस्पर भूमिका एवं कर्त्तव्य समान स्तर पर क्रियाशील होते हैं। उनमें परस्पर ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, आयु भेद, लिंग भेद, पद भेद आदि के अन्तर नहीं होते हैं।

मित्र वही है जो संकट में सहायता करे। मित्र का धर्म है कि वह अपने मित्र को उसके कर्त्तव्यों से अवगत कराए; पालन करने के लिए बाध्य करे; मन, वचन, कर्म एवं शरीर से रक्षा करे; दूसरों के सामने मित्र का गुणगान करे, मित्र को उसके अवगुणों से अवगत कराए, आपस में एक-दूसरे से कुछ नहीं छिपाए; पति-पत्नी, भाई-भाई, बहिन-बहिन, हप-आयु के अतिरिक्त कोई भी अच्छा मित्र होकर मित्र धर्म का पालन करके अपना एवं समाज का विकास कर सकता है।

7. गुरु धर्म (Guru Dharma)—समाज में व्यक्ति की अनेक पद एवं भूमिकाएँ होती है, उसी के अनुसार उसके कर्त्तव्य एवं अधिकार निश्चित किए गए हैं जिन्हें विशिष्ट धर्म कहा गया है। इसमं गुरु का पद सर्वश्रेष्ठ अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के समकक्ष रखा गया है। क्योंकि गुरु ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाता है इसलिए गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। गुरु का धर्म त्याग और अहिंसा के द्वारा शिक्षा का प्रसार करना है। सदैव लोभ, मोह, दम्भ, क्रोध आदि से दूर रहना तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना; गुरु के प्रमुख धर्म हैं। शिष्यों के हित की कामना करना, उनसे पराजित होकर गर्व करना भी गुरु-धर्म है। गुरु समाज का चलता-फिरता आदर्श रूप होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जा कत्तव्य समाज के सदस्यों के विभिन्न पदों एवं भूमिकाओं के अनुसार होते हैं वे सभी विशिष्ट धर्म कहलाते हैं।

(3) आपद्धर्म (Apat Dharma)

व्यक्ति के जीवन में विपत्ति, कष्ट, बीमारी, संकट, शोक आदि आते रहते हैं, ऐसी स्थिति में व्यक्ति सामान्य धर्म एवं विशिष्ट धर्म का पालन नहीं कर पाता है। हिन्दू शास्त्रकारों ने ऐसी विपत्ति या संकट के समय कुछ समाधान एवं परिवर्तन की आज्ञा प्रदान की है जिसे आपद्धर्म कहा गया है। उदाहरण के रूप में जैसे किसी कुल या परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु होने पर अन्य सदस्य सामान्य एवं विशिष्ट धर्मों के नियमों में परिवर्तन कर लेते हैं। परन्तु पुनः सामान्य स्थिति आने पर सामान्य धर्म एवं विशिष्ट धर्म के कर्त्तव्यों का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। आपद्धर्म व्यक्ति को आपत्ति काल में उतनी ही छूट देता है जितनी आवश्यकता होती है। आपद्धर्म की प्रकृति को निम्न घटनाओं के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—(1) उपनिषद् में एक ऋषि की घटना का वर्णन है कि वह भूख के कारण मरणासन्न था। उसने शरीर की रक्षा के लिए शूद्र से जूठे उड़द तो लेकर खा लिए लेकिन शूद्र के हाथ का छुआ पानी नहीं पिया क्योंकि पानी तो ऋषि को अन्यत्र भी उपलब्ध हो सकता था। ऋषि ने भूख शान्त करने तथा जीवित रहने के लिए धर्म का उतना ही उल्लंघन किया जितना आपत्ति के निवारण के लिए उचित था। (2) एक बार एक गाय बधिकों से बचकर ध्यान-मग्न मुनि की गुफा में घुस गई। बधिक पीछा करते वहाँ आए और मुनि से गाय के बारे में पूछताछ की तो मुनि मौन रहे। बधिकों ने गाय को खोज लिया। मुनि झूठ बोलकर गाय की रक्षा कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इस कारण उनकी सारी तपस्या नष्ट हो गई। धर्मानुसार गाय की रक्षा करना मुनि का परम कर्त्तव्य था तथा गौ-रक्षा के लिए झूठ बोलना पाप नहीं माना जाता। आपद्धर्मानुसार गौ-रक्षा ऋषि का कर्त्तव्य था चाह झूठ बोलना पड़े। आपत्तिकाल में झूठ बोलना पाप नहीं है। (3) धर्मराज युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण ने गुरु द्रोणाचार्य को युद्ध से रोकने के लिए झूठ बुलवाया था— "अश्वत्थामा मारा गया" और

उनका अगला आधा वाक्य "वह हाथी हो या मनुष्य" नगाड़ों, शंख आदि के शोर में दवा दिया गया जिसे द्रोणाचार्य नहीं सुन सके। महाभारत के युद्ध में यह योजनाबद्ध कार्य आपद्धर्म के अनुसार किया गया था।

जब दो धर्मों में टकराव हो तब आपद्धर्म द्वारा संकट को टालने के लिए महत्त्वपूर्ण धर्म की रक्षा करना तथा कुछ समय के लिए दूसरे धर्म के नियमों का त्याग किया जाता है। शास्त्रों में धर्मसंकट के निवारण को ही आपद्धर्म कहा गया है। हिन्दू धर्म में आपद्धर्म का प्रावधान होने के कारण ही यह अनेक आक्रमणों, संकटों तथा बाधाओं को समय-समय पर सहन करता हुआ आज भी अपने अस्तित्व को बनाए हुए है। इन विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू धर्म की विशेषता इसकी व्यावहारिकता एवं उदारता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण ही हिन्दू धर्म का इतिहास अन्य धर्मों एवं संस्कृतियों से कहीं अधिक दीर्घकालीन है।

सामान्य एवं विशिष्ट धर्म में अन्तर

(Difference between Samanya and Vishishta Dharma)

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति को इन दोनों धर्मों का आवश्यक रूप से पालन करना होता है। इन दोनों धर्मों में उद्देश्य, क्षेत्र, महत्त्व परिवर्तनशीलता, पूजा, व्यक्तिवादिता और मानवता के गुणों के आधार पर निम्न अन्तर किए जा सकते हैं—

सामान्य एवं विशिष्ट धर्म में अन्तर

क्र. सं.	आधार	विशिष्ट धर्म	सामान्य धर्म
1.	उद्देश्य	उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति तथा पारलौकिक है। निःश्रेयस की साधना करना है।	उद्देश्य लौकिक जीवन से सम्बद्ध है। व्यक्ति को सामाजिक अनुकूलन के अवसर प्रदान करना तथा अभ्युदय की क्षमता का विकास करना है।
2.	क्षेत्र	क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है तथा इसका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।	इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत एक छोटे समूह के लिए ग्रहणीय होने के कारण सीमित होता है।
3.	महत्त्व	तुलनात्मक रूप से यह धर्म कम महत्त्वपूर्ण है। दोनों के संघर्ष की स्थिति में विशिष्ट धर्म का पालन किया जाता है।	यह सामान्य धर्म की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। संघर्ष की अवस्था में विशिष्ट धर्म को प्राथमिकता दी जाती है।
4.	स्थिरता	इसके नियम पूर्णतया स्थिर होते हैं। किसी प्रकार का परिवर्तन करना सम्भव नहीं है।	इसमें देश, काल तथा स्थान के अनुसार परिवर्तन करने की कुछ छूट सम्भव है।
5.	पूजा	यह देवी-देवताओं की पूजा और ईश्वरीय विश्वास से ही सम्बन्धित है।	यह कर्म-प्रधान धर्म है जिसकी विस्तृत विवेचना गीता में वर्णित है।

6.	प्रकृति	यह समष्टिवादी धर्म है इसका उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का कल्याण करना है। इसकी प्रकृति सामाजिक है।	यह प्रत्येक व्यक्ति के कर्त्तव्यों का निरूपण अन्य व्यक्तियों के साथ होने वाले सम्बन्धों के सन्दर्भ में करता है। इसकी प्रकृति व्यक्तिवादी है।
7.	मानवता	यह मानवीय धर्म है। यह मानवीय गुणों का विकास करता है तथा आत्मा के परिष्कार से सम्बन्धित है।	यह उपयोगितावादी धर्म है। इसका उद्देश्य सम्पूर्ण समाज को संगठित रखना तथा समूहों में सामंजस्य स्थापित करना है।

हिन्दू धर्म का भारतीय समाज पर प्रभाव
(Impact of Hindu Religion on Indian Society)

हिन्दू धर्म ने भारतीय समाज एवं संस्कृति पर अनेक प्रकार से प्रभाव डाले हैं जिसके कारण ही भारतीय समाज की निरन्तरता सदियों से बनी हुई है। इसने भारतीय समाज के संगठन, सामाजिक एकता, नियमों एवं नैतिकता, सामाजिक नियन्त्रण, परिवर्तन, व्यक्तियों के चरित्र-निर्माण एवं सद्गुणों का विकास, भावात्मक सुरक्षा एवं संस्कृति की रक्षा आदि पर निम्न प्रभाव डाले हैं—

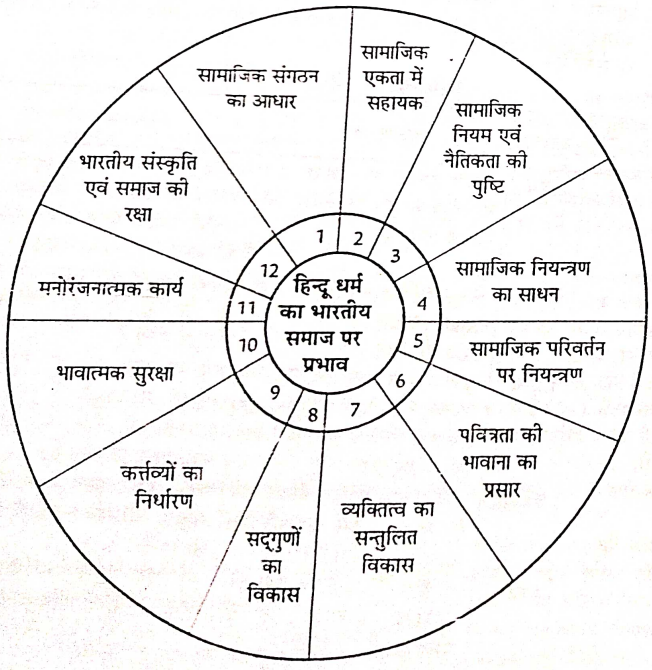

1. सामाजिक संगठन का आधार (Basis of Social Organisation)—भारतीय समाज के संगठन का आधार वैदिक काल से हिन्दू धर्म रहा है। हिन्दू धर्म में वेदों, उपनिषदों, आचार संहिताओं के द्वारा हिन्दुओं के लिए सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म एवं आपद्धर्म के द्वारा सभी प्रकार के कर्त्तव्य और अधिकारों को निश्चित कर दिया गया है। इससे सभी व्यक्ति अलौकिक शक्ति के भय के कारण इनका पालन करते हैं जिसने भारतीय समाज के संगठन को आधार प्रदान करने के साथ-साथ संगठित भी रखा है। जब भी किसी प्रजाति या संस्कृति ने इसे बदलने का प्रयास किया इस सुदृढ़ आधार के कारण वह प्रजाति या संस्कृति इस वृहद् संगठन में विलीन हो गई।

2. सामाजिक एकता में सहायक (Assist in Social Unity)—हिन्दू धर्म के कर्त्तव्य, नियम, मूल्य, आदर्श आदि समाज कल्याण तथा व्यक्तिगत त्याग को प्राथमिकता देकर समाज में एकता को स्थापित करते हैं। हिन्दू धर्म के उत्सव, त्यौहार, व्रत, तीर्थयात्रा, मेले आदि लोगों को परस्पर एक-दूसरे के निकट आने का अवसर प्रदान करते हैं तथा भाईचारा पैदा करते हैं। जाति प्रथा में जजमानी व्यवस्था, एकता का अनोखा उदाहरण है जो कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास के कारण विभिन्न जातियों को साथ-साथ रहने के लिए प्रोत्साहित करती है तथा एकता की भावना पैदा करती है।

3. सामाजिक नियम एवं नैतिकता की पुष्टि (Strengthens Social Norms and Morality)—हिन्दू धर्म में अनेक सामाजिक नियम एवं नैतिकता की पुष्टि समय, स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार प्रदान की गई है। हिन्दू धर्म में धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक नियमों में अन्तर-रेखा खींचना कठिन है। धर्म और विशेष रूप से आपद्धर्म के कारण व्यक्ति कठिन-से-कठिन परेशानियों एवं आपात की स्थिति में धैर्य नहीं छोड़ता है। समाज को बनाए रखने, कर्त्तव्यों का पालन करने तथा वचनबद्धता के पालन करने में लोगों ने अपना तन-मन-धन सब कुछ त्याग दिया है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हिन्दू समाज में देखे जा सकते हैं।

4. सामाजिक नियन्त्रण का साधन (Means of Social Control)—व्यक्ति धार्मिक नियमों का उल्लंघन इसलिए नहीं करता क्योंकि इन नियमों के पीछे अलौकिक शक्ति का भय होता है। धार्मिक कर्त्तव्यों का उल्लंघन करना या तोड़ना पाप समझा जाता है इस धारणा के कारण समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है। झूठ बोलने बेईमानी करने आदि से डरता है। चोरी करना, डाका डालना महापाप समझता है। इस प्रकार से हिन्दू समाज में व्यक्ति नियन्त्रण में रहता है। पाप-पुण्य, कर्म, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक सम्बन्धी विश्वासों ने तो व्यक्ति को नियन्त्रित करके हिन्दू धर्म को सामाजिक नियन्त्रण का सर्वोत्तम साधन बना दिया है।

5. सामाजिक परिवर्तन पर नियन्त्रण (Control on Social Change)—समाज में परिवर्तन सकारात्मक एवं नकारात्मक, हितकारी और अहितकारी दोनों प्रकार के होते हैं। धर्म के भय के कारण भारतीय समाज में परिवर्तन की गति धीमी है। धर्म ने समाज को परम्पराओं में जकड़ रखा है इस कारण परिवर्तनों पर भी अंकुश रहता है तथा विघटनकारी नकारात्मक एवं अहितकारी परिवर्तन तो हो ही नहीं पाते हैं।

6. पवित्रता की भावना का प्रसार (Spread of Sacred Feelings)—दुर्खीम के अनुसार समाज में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं—पवित्र और साधारण, या पवित्र और अपवित्र। पवित्र या पावन सामाजिक क्रियाएँ धर्म के द्वारा निर्धारित होती हैं। हिन्दू धर्म में प्रातःकाल उठने से लेकर सोने तक, जन्म से लेकर मृत्यु तक ही नहीं पूर्वजन्म, वर्तमान जन्म और अगला जन्म सभी पर धर्म का नियन्त्रण होता है। इस प्रकार धर्म पवित्र क्रियाओं को जन्म देता है उनका विस्तार और प्रसार करता है। व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया को धर्म नियन्त्रित, निर्देशित एवं संचालित करता है। इसीलिए भारतीय समाज धर्म-प्रधान समाज है।

7. व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास (Balanced Development of Personality)—हिन्दू-धर्म कर्म, पुनर्जन्म, भाग्य, पाप, पुण्य आदि विश्वासों एवं धारणाओं पर आधारित होने के कारण तथा वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था के द्वारा व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करता है तथा कष्ट को सहन करने की व्यक्ति में क्षमता पैदा करता है। व्यक्ति विघटन की स्थिति में भी भाग्य को कारण मानकर सन्तुलित मानसिक स्थिति में रहता है। दुःख में भी धर्म व्यक्ति को पवित्र संस्कारों के द्वारा सुख प्रदान करता है तथा जीवन से निराश नहीं होने देता है।

8. सद्गुणों का विकास (Development of Virtues)—धर्म अनेक प्रकार से व्यक्ति में सद्गुणों का विकास करता है, जैसे—रामलीला, रासलीला, रामायण पाठ, गीता पाठ, भजन-पूजन, व्रत, अनुष्ठान त्यौहार, जीवन के संस्कार आदि के अवसर पर सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म तथा आपद्धर्म के नियम आदि दोहराए जाते हैं। इससे व्यक्ति और समाज में धर्म द्वारा सद्गुणों का प्रसार, प्रचार एवं विकास होता रहता है।

9. कर्त्तव्यों का निर्धारण (Determination of Duties)—हिन्दू धर्म अपने समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए समय, स्थान एवं परिस्थिति के अनुसार कर्त्तव्यों को निर्धारित, नियन्त्रित एवं निर्देशित करता है। ऐसा विशेष रूप से विशिष्ट धर्म करता है। वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म, मित्र धर्म आदि इसके उदाहरण हैं। धर्म में महत्त्वपूर्ण लक्षणों का उद्देश्य भी व्यक्ति के कर्त्तव्यों का निर्धारण करने के लिए समय-समय पर किसी-न-किसी रूप में होता रहता है।

10. भावात्मक सुरक्षा (Emotional Security)—वास्तविकता तो यह है कि जब व्यक्ति चारों ओर से निराश हो जाता है तब अन्तिम सहारा उसे धर्म ही नजर आता है जो भावात्मक सुरक्षा एवं सन्तुलन प्रदान करता है। परन्तु हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो व्यक्ति को हमेशा भावात्मक सुरक्षा प्रदान करता रहता है। तुलसीदास जी ने लिखा है, "हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश, विधि हाथ"। यह धार्मिक विश्वास व्यक्ति को सभी अवस्थाओं में विचलित होने से सुरक्षा प्रदान कर रहा है। हिन्दू धर्म इस प्रकार के विश्वासों, घटनाओं, उदाहरणों से भरा बड़ा है, जिसके सहारे व्यक्ति सभी प्रकार की परिस्थितियों से अनुकूलन कर लेता है। हिन्दू धर्म अनेक प्रकार से भावात्मक एकता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहता है।

11. मनोरंजनात्मक कार्य (Recreational Functions)—ऐसा नहीं है कि हिन्दू धर्म व्यक्ति के लिए मात्र प्रतिबन्ध, कर्त्तव्य, पूजा-पाठ और कर्म-प्रधान ही हो बल्कि यह व्यक्ति को अनेक प्रकार से मनोरंजन भी प्रदान करता है। अनेक संस्कारों, उत्सवों, त्योहारों,

मेलों, यज्ञ, पूजा-पाठ के द्वारा व्यक्ति, परिवार, ग्राम तथा राष्ट्रों आदि के स्तर पर मनोरंजन प्रदान करता है। हिन्दू समाज में कोई भी कार्य धार्मिक कृत्यों, अनुष्ठानों आदि के बिना सम्पन्न नहीं होता है। इसमें दान-दक्षिणा के साथ-साथ प्रीतिभोज आदि का प्रावधान भी होता है। लोग परस्पर मिलते हैं तथा अनेक प्रकार से मनोरंजन करते हैं।

12. भारतीय संस्कृति एवं समाज की रक्षा (Protection of Indian Society and Culture)—हिन्दू धर्म ने सदियों से भारतीय समाज एवं संस्कृति की रक्षा की है तथा एकीकरण को बनाए रखा है। इसका मुख्य कारण हिन्दू धर्म का उदारवादी होना है। जो भी संस्कृति या प्रजाति बाहर से भारत में आई उसे इस धर्म ने अपने में मिला लिया तथा समाज एवं संस्कृति में बहुलता के विकास के साथ-साथ एकता में वृद्धि की तथा इसकी रक्षा की है। दुबे, पी.वी. काणे, हट्टन, घुर्ये आदि अनेक विद्वानों ने लिखा है कि हिन्दू धर्म की प्रमुख भूमिका भारतीय समाज की रक्षा करने में उल्लेखनीय रही है। संसार में अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों की उत्पत्ति, विकास और ह्रास हुआ। मानव इतिहास में वैदिक संस्कृति के समान और कोई संस्कृति इतने दीर्घकाल तक नहीं रह पाई। वैदिक संस्कृति को लगभग पिछले 6,000 वर्षों से निरन्तरता प्रदान करने का श्रेय हिन्दू धर्म को जाता है। हिन्दू धर्म की विभिन्न विशेषताओं ने भारतीय समाज को एकता, निरन्तरता तथा सुदृढ़ता प्रदान की है।

हिन्दू धर्म के दोष
(Demerits of Hindu Religion)

हिन्दू धर्म की अनेक विशेषताओं के होते हुए भी इसमें कुछ दोष भी हैं जिनका अध्ययन करना तथा निवारण करना अत्यावश्यक है। हिन्दू धर्म में दोष उत्पन्न होने का कारण विशेष परिस्थितियाँ रही हैं। जैन और बौद्ध धर्मों के प्रादुर्भाव के बाद हिन्दू धर्म में दोष आने प्रारम्भ हुए थे। जैन और बौद्ध धर्मों ने हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया था। हिन्दू धर्म की बौद्ध एवं जैन धर्म से रक्षा करने के लिए हिन्दू धर्म में अनेक निषेध लगाए गए, विशेष रूप से शूद्रों एवं अन्त्यजों पर तो अमानवीय निर्योग्यताएँ थोपी गई थीं। स्मृतियों की रचनाओं में ऐसे प्रतिबन्धों को और बढ़ावा दिया गया। वर्ण को कर्म-प्रधान के स्थान पर जन्म-प्रधान घोषित किया गया। कर्मकाण्डों को महत्त्व दिया गया। मध्यकाल में तो धर्म रूढ़िवादी हो गया। समाज में लोग कर्मकाण्डों को प्रथा के रूप में देखने लगे। आश्रम-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था का महत्त्व कम हो गया। व्यक्ति धर्म के कर्त्तव्य भूल गया। सामाजिक एकता, राष्ट्रीय एकीकरण जैसे मूल्यों का ह्रास हो गया। समाज में अनेक कुप्रथाएँ—जाति-प्रथा, पर्दा-प्रथा, अन्तर्विवाह, देवदासी प्रथा, अस्पृश्यता, कुलीन विवाह, स्त्रियों की निम्न स्थिति आदि भी प्रचलित हो गई। हिन्दू धर्म का प्रभाव निम्न कारणों से कम होता जा रहा है—

1. धर्म की रूढ़िवादी प्रकृति (Conservative nature of Religion)—हिन्दू धर्म में अनेक अन्धविश्वासों, कुसंस्कारों तथा पाखण्डों का प्रादुर्भाव होने के कारण यह धर्म रूढ़िवादी हो गया है। इसमें नवीन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने की क्षमता प्रायः समाप्त-सी हो गई है। अधिकतर लोग धर्म की मौलिक विशेषताओं से अवगत नहीं हैं। लोग नास्तिक होते जा रहे हैं।

2. पश्चिमीकरण (Westernization)—भारत में पश्चिमीकरण के कारण आध्यात्मवाद के स्थान पर भौतिकवाद की दिनों-दिन वृद्धि होती जा रही है। समूहवाद, त्याग, बलिदान, दान आदि के स्थान पर व्यक्तिवाद, स्वार्थ-लोलुपता तथा संकीर्णता बढ़ती जा रही है। धर्म का महत्त्व घटता जा रहा है। लोग भौतिकवादी होते जा रहे हैं।

3. औद्योगीकरण (Industrialization)—जब से भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है इसने धन के महत्त्व को बढ़ा दिया है। आज व्यक्ति की सामाजिक पारिस्थिति का निर्धारण धन से होने लगा है। समाज का प्रत्येक सदस्य धर्म के कर्त्तव्यों के पालन करने के स्थान पर अधिक-से-अधिक धन कमाना चाहता है। औद्योगीकरण से व्यवसायों की बहुलता हो गई है जिससे जाति और वर्ण पर आधारित व्यवसाय के प्रतिबन्ध कमजोर पड़ गए हैं। इससे धर्म के नियम समाज में महत्त्व खोते जा रहे हैं तथा नए मूल्य एवं लक्ष्य पनप रहे हैं।

4. नैतिकता के दोहरे मापदण्ड (Double standards of Morality)—आज भारत देश में परिस्थितियाँ बहुत बदल गई हैं। धर्म का प्रभाव कम हो गया है। देश के अधिकतर नागरिक बाहर से तो स्वयं को आस्तिक, धर्मपरायण, त्यागी, दानी, कर्त्तव्य-परायण आदि रूपों में प्रस्तुत करते हैं लेकिन उनके लक्ष्य तथा साधन भौतिकवादी हैं। अपने स्वार्थ के लिए वे कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति करना चाहता है, व्यक्ति धर्म के प्रति उदासीन है। इस नैतिकता के दोहरे मापदण्ड के कारण हिन्दू धर्म का ह्रास हो रहा है।

5. अशिक्षा (Illiteracy)—देश की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। मठाधीश, पुरोहित आदि जनसाधारण का धर्म के नाम पर तरह-तरह से शोषण कर रहे हैं। पुरुषार्थ का महत्त्व प्रायः समाप्त-सा हो गया है। स्थानीय एवं व्यक्तिगत विश्वास को लौकिकता का रूप प्रदान करके हिन्दू धर्म का अंग बनाया जा रहा है। कर्म की प्रधानता गौण हो गई है। सामान्य-धर्म और विशिष्ट-धर्म का स्थान सभी जगह, आपद्धर्म को दिया जा रहा है। आपद्धर्म संकट काल के स्थान पर सामान्य परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। सभी नैतिक मूल्यों का पतन हो गया है। अशिक्षा के कारण लोग धर्म का अर्थ समझ नहीं पा रहे हैं, जिसका लाभ स्थानीय मन्दिर, मठ, पुरोहित उठा रहे हैं।

सारांश (Conclusion)

हिन्दू धर्म को अपने वास्तविक स्वरूप में लाने के लिए तथा कमियों को दूर करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास करना आवश्यक है क्योंकि इस धर्म से ही मानव-कल्याण सम्भव है। यह धर्म कल्याणकारी है जिसकी श्रेष्ठता का वर्णन मैक्समूलर ने निम्न शब्दों में किया है—

"यदि मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश के नीचे मानव मन के सर्वोत्तम पक्ष का पूर्ण विकास हुआ? कहाँ के लोगों ने जीवन की गम्भीरतम समस्याओं पर गहनतम विचार किया? और किन्होंने उनमें से कुछ समस्याओं के ऐसे उत्तर खोजे हैं जो प्लेटो और काण्ट जैसे अध्येताओं के लिए भी मान्य हैं, तो मैं भारत की ओर ही संकेत करूँगा। यदि मैं स्वयं से ही प्रश्न करूँ कि हम यूरोपवासी (जो केवल यूनानी, रूसी और यहूदी, विचारों में पले हैं) कहाँ के साहित्य से वह विवेक-दृष्टि प्राप्त करें जो हमारे जीवन को अधिक पूर्ण, सर्वतोन्मुखी, अधिक विराट या यों कहें कि सच्चे अर्थों में मानवीय बनाने के लिए अधिक

आवश्यक है, कहाँ से मिलेगा हमें वह तत्त्व जो केवल इसी जीवन के लिए नहीं अपितु एव उत्कृष्ट और शाश्वत् जीवन के लिए अनिवार्य है—तो मैं पुनः भारत की ओर संकेत करूँगा।'

इस कथन से हिन्दू धर्म का महत्त्व स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।